CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

First draft received: 12.06.2023, Reviewed: 18.06.2023, Accepted: 26.06.2023, Final proof received: 30.06.2023

महर्षि अरविन्द घोष के शैक्षिक विचारों की आधुनिक सन्दर्भ में प्रासांगिकता

डा. पवन कुमार
प्राचार्य
ए.एस.कॉलेज ऑफ एजुकेशन, कलाल-माजरा, खन्ना, लधियाना, पंजाब
Email - pawarkumar197115@gmail.com, *Mob.-9417150563, 9914414333*

सारांश

श्री अरविन्द एक राष्ट्रवादी विचारक थे। वह स्वयं एक देश भक्त थे। इसके साथ श्री अरविन्द भौतिकवादी जीवन पद्धति के साथ शिक्षा के तादाम्य के बीच मानव जीवन के अंतर्मन में उतर आने वाली भौतिकता स्वार्थपरता व संकीर्णता से मानव जाति को बचाने का प्रयास करते हुए शिक्षा को आध्यात्मिकता से जोडते है वह बालक के भौतिक विकास व उसके आत्मिक विकास को पर्याप्त महत्व देते हए शिक्षा के माध्यम से स्वस्थ, शुद्ध व नैतिक शिक्षितों के द्वारा आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग दिखाते है। उन्होने शिक्षा को मनुष्य में निहित शक्तियों का बाह्य प्रस्फुटन माना। मनुष्य में निहित तामसी गुणों का दमन कर रजस गुणों व सात्विक गुणों को जागृत करना शिक्षा का प्रमुख उत्तरदायित्व माना था। जोकि एक आदेश व्यक्तित्व का निर्माण कर सकेगा।

मुख्य शब्द : *मानवाधिकार, जीवन-दर्शन, समाज व्यवस्था आदि.*

श्री अरविन्द घोष के शिक्षा दर्शन का आधार आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य तथा योग पर आधारित है। जिस शिक्षा पद्धति में ये तीनों पक्ष होगे उसी से मनुष्य का विकास होगा। मनुष्य में ईश्वर को पहचानने की शक्ति होती है।श्री अरविन्द घोष आधुनिक युग में उपनिषदों के दृष्टा के अवतार हैं। उनका दर्शन पूर्ण अनुभव और अदम्य बुद्धि का अनुपम सामंजस्य है। जो आध्यात्मिक विकास में सहायक है।

अरविन्द घोष

अरविन्द घोष या श्री अरविन्द (जन्म: 1872. मृत्यु 1950) एक महान योगी एवं दार्शनिक थे। वे 15 अगस्त 1872 को कोलकाता में जन्मे थे। इनके पिता एक डॉक्टर थे। इन्होंने युवा अवस्था में स्वतंत्रता संग्राम में क्रान्तिकारी के रुप में भाग लिया, किन्तु बाद में यह एक योगी बन गये और इन्होंने पांडिचेरी में एक आश्रम स्थापित किया। वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थों पर टीका लिखी। योग साधना पर मौलिक ग्रन्थ लिखे। उनका पूरे विश्व में दर्शन शास्त्र पर बहुत प्रभाव रहा है और उनकी साधना पद्धति के अनुयायी सब देशों में पाये जाते हैं। यह कवि भी थे। श्री अरविन्द का प्रादुर्भाव भी भारतवर्ष के धर्म और संस्कृति के वैभव की रक्षा करने के लिए हुआ था। उनके विचार मे धर्म वह नहीं, जो ढोंग, व्यभिचार, प्रदर्शन के लिए है। केवल पूजा-पाठ, साधु-सन्यासी की चर्चा, भगवान की चर्चा, और संसार त्याग को ही धर्म की संज्ञा देने वाले धर्म शब्द की वास्तविक परिभाषा नहीं दे सकते। श्री अरविन्द धर्म का व्यापक अर्थ प्रकट करते है कि "सारा जीवन ही धर्म क्षेत्र है, संसार भी धर्म है। केवल आध्यात्मिक ज्ञानालोचना और भक्ति की भावना धर्म नहीं, कर्म भी धर्म है" यही महती शिक्षा सनातन काल से हमारे साहित्य में व्याप्त रहीं है- एषः धर्मा सनातनः । उन्होंने अपने कर्मयोग' में योग, प्रेम, ज्ञान, सभी में हिन्दु धर्म के सर्वोच्च लक्ष्य को प्रधानता दी है। उनका मत था कि शरीर और मन के भीतर ईश्वर का साक्षात्कार भी हो सकता है। श्री अरविन्द के धर्म की इस विशालता में आत्मा और परमात्मा का पारस्परिक संबंध है। ईश्वर के दर्शन प्राप्त करने का पथ ही धर्म कर्म और ईश्वर का सच्चा पथ मनुष्य के हृदय की आध्यात्मिक अनुभूतिया है। योगीराज अरविन्द ने भारतवर्ष की परतंत्रता के दिनों में भारतवासियों को आर्य धर्म' के माध्यम से भागवत् शक्ति को पुर्नजागृत करने की शिक्षा दी थी। राष्ट्रीयता और संस्कृति के बीच धार्मिक क्रान्ति की थीं। उन्होंने उस समय शंखनाद करते हुए कहा था कि, "जब तक देशवासियों को यह चेतना नहीं मिलती है कि भारतवर्ष का कण-कण विराट् भागवत शक्ति से ओत-प्रोत है, मातृ शक्ति से यहाँ के पर्वत, भूमि, नदी, सागर, पल्लवित है, तब तक उनकी भुजाओं में शक्ति और हृदय में रक्षा का संकल्प उपज नहीं सकता।' यही कारण है कि श्री अरविन्द ने भारतवासियों को आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का रहस्य बतलाते हुए कहा

था कि "हम विजयी अवश्य होंगे पर इस सत्य को अपने से न छपाये कि पराधीनता के निराशापूर्ण वर्षों का प्रभाव समाप्त करने के लिए, बाहरी और आंतरिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए, हमें एक बाहरी और आंतरिक परिवर्तन की आवश्यकता है, क्योंकि हमें भारत के वास्तविक भाग्य का विधाता बनना है।" उनकी आशापूर्ण वाणी थी "भारतीयों भारत की आध्यात्मिकता, भारत की साधना, तपस्या, ज्ञान और शक्ति ही हमें अवश्य स्वतन्त्र और महान बनवायेगी। उनका विश्वास था कि आध्यात्मिक साधनों से दैहिक सत्ता में चरित्रार्थ करने का कार्य अध्यात्म-दृष्टि' ही कर सकती है।"

प्रारम्भिक शिक्षा

अरविन्द के पिता डॉक्टर कृष्णधन घोष उन्हें उच्च शिक्षा दिलाकर उच्च सरकारी पद दिलाना चाहते थे, अतएव मात्र 7 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने इन्हें इंग्लैण्ड भेज दिया। उन्होंने केवल 18 वर्ष की आयु में ही आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। इसके साथ ही उन्होंने अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, ग्रीक एवं इटेलियन भाषाओं में भी निपुणता प्राप्त की थी।

युवावस्था

देशभक्ति से प्रेरित इस युवा ने जानबूझ कर घुड़सवारी की परीक्षा देने से इन्कार कर दिया और राष्ट्रसेवा करने की ठान ली। इनकी प्रतिभा से बड़ौदा नरेश अत्यधिक प्रभावित थे। अतः उन्होंने इन्हें अपनी रियासत में शिक्षाशास्त्री के रूप में नियुक्त कर लिया। बडौदा में ये प्राध्यापक, वाइस प्रिंसिपल, निजी सचिव आदि कार्य योग्यता पूर्वक करते रहे और इस दौरान हजारों छात्रों को चरित्रवान देशभक्त बनाया। 1896 से 1905 तक उन्होंने बड़ौदा रियासत में राजस्व अधिकारी से लेकर बड़ौदा कॉलेज के फ्रेंच अध्यापक और उपाचार्य रहने तक रियासत की सेना में क्रान्तिकारियों को प्रशिक्षण भी दिलाया था। हजारों युवकों को इन्होंने क्रान्ति की दीक्षा दी थी।

वे निजी रुपये-पैसे का हिसाब नहीं रखते थे परन्तु राजस्व विभाग में कार्य करते समय उन्होंने जो विश्व की प्रथम आर्थिक विकास योजना बनायी उसका कार्यान्वयन करके बड़ौदा राज्य देशी रियासतों में अन्यतम बन गया था। महाराजा मुम्बई की वार्षिक औद्योगिक प्रदर्शनी के उद्घाटन हेतु आमन्त्रित किये जाने लगे थे। लार्ड कर्जन के बंग-भंग की योजना रखने पर सारा देश तिलमिला उठा। बंगाल में इसके विरोध के लिये जब उग्र आन्दोलन हुआ तो अरविन्द घोष ने इसमें सक्रिय रुप से भाग लिया। नेशनल ला कॉलेज की स्थापना में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। मात्र 75 रुपये मासिक पर इन्होंने वहाँ अध्यापन कार्य किया। पैसे की जरुरत होने के बावजूद उन्होंने कठिनाई का मार्ग चुना। अरविन्द कोलकाता आये तो राजा सुबोध मलिक की अट्टालिका में ठहराये गये। पर जनसाधारण को मिलने में संकोच होता था। अतः वे सभी को विस्मित करते हुए 19/8 छक्कू खानसामा गली में आ गये। उन्होंने किशोरगंज (वर्तमान में बंग्लादेश में) में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अब वे केवल धोती, कुर्ता और चादर ही पहनते थे। उसके बाद उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालय से भी अलग होकर अग्निवर्षा पत्रिका वन्देमातरम् का प्रकाशन प्रारम्भ किया। ब्रिटिश सरकार इनके क्रान्तिकारी विचारों और कार्यों से अत्यधिक आतंकित थी अतः 2 मई 1908 को चालीस युवकों के साथ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इतिहास में इसे 'अलीपुर षडयंत्र केस' के नाम से जानते हैं। उन्हें एक वर्ष तक अलीपुर जेल में कैद रखा गया। अलीपुर जेल में ही उन्हें हिन्दू धर्म एवं हिन्दू राष्ट्र विषयक अदभुत आध्यात्मिक अनुभूति हुई। इस षडयंत्र में अरविन्द को शामिल करने के लिये सरकार की ओर से जो गवाह तैयार किया था उसकी एक दिन जेल में ही हत्या कर दी गयी। घोष के पक्ष में प्रसिद्ध बेरिस्टर चितरंजन दास ने मुकदमे की पैरवी की थी। उन्होंने अपने प्रबल तर्कों के आधार पर अरविन्द को सारे अभियोगों से मुक्त घोषित करा दिया। इससे सम्बन्धित अदालती फैसले 6 मई 1909 को जनता के सामने आये। 30 मई 1909 को उत्तरपाड़ा में एक संवर्धन सभा की गयी वहाँ अरविन्द का एक प्रभावशाली व्याख्यान हआ जो इतिहास में उत्तरपाडा अभिभाषण के नाम से प्रसि अभिभाषण में धर्म एवं राष्ट्र विषयक कारावास अनुभूति का विशद विवेचन करते हए कहा. "जय मझे आप लोगों के द्वारा आपकी सभा में कुछ कहने के लिए कहा गया तो में आज एक विषय हिन्द धर्म पर कहूँगा। मुझे नहीं पता कि मैं अपना आशय पूर्ण कर पाऊंगा या नहीं। जब में यहाँ बैठा था तो मेरे मन में आया कि मुझे आपसे बात करनी चाहिए। एक शब्द पर भारत से कहना चाहिये। यही शब्द मुझसे पहले जेल में कहा गया और अब यह आपको कहने के लिये में जेल से बाहर आया हूँ।" "एक साल हो गया है मुझे यहाँ आए हए। पिछली बार आया था तो यहाँ राष्ट्रीयता के बड़े-बड़े प्रवर्तक मेरे साथ एकान्त से बाहर आया जिसे ईश्वर ने भेजा था ताकि जेल के एकान्त में वह ईश्वर के शब्दों को सुन सके। यह तो वह ईश्वर ही था जिसके कारण आप यहाँ हजारों की संख्या में आये। अब वह बहुत दूर है हजारों मील दूर है।"

श्री अरविन्द द्वारा स्थापित संस्थाएँ: श्री अरविन्द द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाएँ निम्नलिखित हैं -

अरविन्द आश्रम

राजनीति करने के बाद सन् 24 नवम्बर 1926 ई. में श्री अरविन्द ने पाण्डिचेरी में आश्रम की स्थापना की। अपने विचारों को मूर्तरूप देने के लिये इस आश्रम की स्थापना की, किन्तु इसे विद्यालय का रूप नहीं दिया। इसमें कुछ साधक एकत्र हो गये थे और वे आध्यात्मिक साधना में लीन हो गये थे। प्रारम्भ में इसमें सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु यह संख्या बढती गयी। आश्रम में जाति-पाति का बन्धन नहीं था। सन् 1920 ई. में फ्रांसीसी महिला श्री अरविन्द के दर्शन की ओर उत्कृष्ट हुई। इनका नाम मिसेज मेरी रिचर्डस था। उन्होंने आश्रम की सदस्यता स्वीकार की ओर बाद में आश्रम व्यवस्था में भारी योगदान रहा। इन्हें माता जी के नाम से जाना जाता था। आश्रम में आध्यात्मिक चिन्तन पर बल दिया जाता था। आश्रमवासी मन वचन और कर्म से अपने को पवित्र बनाने का प्रयास करते थे। आश्रम का मुख्य उद्देश्य मानवीय प्रेम का विकास करना था। इसलिये संसार की समस्त संस्कृतियो का यह संगम है और सभी संस्कृतियों का यहाँ विकास किया जाता था। आश्रम में यद्यपि पर्याप्त व्यवस्था स्वतंत्रता रहती थी, किन्तु आध्यात्मिक अनुशासन में सभी रहते थे।

श्री अरविन्द और अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र

सन् 1952 में श्री अरविन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापन की थी। यह विश्वविद्यालय सन् 1943 में श्री अरविन्द द्वारा स्थापित आश्रम स्कूल का विकसित रूप है। जब आश्रम में साधकों की संख्या बढ़ने लगी तो सन् 1940 में ही साधकों को बच्चों को लाने की आज्ञा दे दी गयी। पहले उसमें छात्रों की संख्या 32 थी, किन्तु अब वह संख्या 400 के आस-पास है। इस विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, विज्ञान, दर्शन तथा अनेक भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था है। इसमें सहशिक्षा है। यह वास्तव में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। इस समय लगभग 15 देशों के छात्र इसमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

अरविन्द जी की प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ

श्री अरविन्द घोष आध्यात्मिक भोगी ही नहीं वरन् वास्तव में कर्मयोगी थे। एकान्त में रहकर उन्होंने चिन्तन किया उसको उन्होंने लेखनी बद्ध किया। उनके द्वारा रचित कृतियाँ निम्नलिखित हैं

1. द फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर
2. द रिनाइस इन इण्डिया
3. एसेंज ऑन गीता
4. द नेशनल वेल्यु आटर्स
5. ब्रेन ऑफ इण्डियन
6. द मदर
7. लेटर्स ऑन योगा
8. सावित्री
9. योग समन्वय

10. दिव्य जीवन
11. फ्यूचर पोयट्री

12 मार्च सन् 1906 को अरविन्द घोष ने कोलकाता में युगान्तर नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक आरम्भ किया इसमें अरविन्द के लेख छपते रहते थे। 6 अगस्त 1906 को विपिन चन्द्र पाल ने 'वन्देमातरम्' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक आरम्भ किया इमें श्री अरविन्द जी शमिल हो गये। सन 1909 के मध्य में श्री अरविन्द ने 'कर्मयोगिन' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया। इसका प्रथम संस्करण जून 1909 को तथा अन्तिम संस्करण 5 फरवरी 1910 को प्रकाशित हुआ।
सन् 1910 में पाण्डिचेरी आने के बाद उन्होंने किसी भी प्रकार के लेख चार वर्षों तक नहीं लिखे। सन् 1914 में उन्होंने एक दार्शनिक आध्यात्मिक मासिक पत्र "आर्य" का का प्रकाशन किया और अनेक आध्यात्मिक लेख लिखे।

1. ईशोपनिशद
2. गीता प्रबन्ध
3. दिव्य जीवन
4. योग समन्वय

ये सभी लेख अंग्रेजी भाषा में और "आर्य में प्रकाशित हुए। प्राचीन भारतीय परम्परा में उन्होंने उपनिषदों और गीता की व्याख्या की इसका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ दिव्य जीवन है। इसके दो भाग है
1. मानव एकता का आदर्श
2. मानव चक्र
काव्य दृष्टि से इनके महाकाव्य 'सावित्री अंग्रेजी भाषा में विशिष्ट स्थान रखता है। इस अवधि में श्री अरविन्द ने अपने दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक ग्रथों की रचना की जिसमें "लाइफडिवाइन" सबोधिक प्रसिद्ध रचना है। जोकि सर्व दर्शन सार संग्रह नहीं है, बल्कि सच्चिदानन्द सत्ता के रहस्य के साक्षात्कार का मानव सुलभ भाषा में लेखन तथा अध्यात्मिक साधना के साथ मानव जाति को इस सिद्ध पुरूष ने संसार का त्याग कर दिव्यलोक को प्रस्थान किया। श्री अरिवन्द का मानना था कि मनुष्य में आध्यात्मिक तत्व सवोच्च है अतः जीवन का लक्ष्य इस आध्यात्मिक तत्य को पूर्ण रूप में अभिव्यक्त करना है। मानव जीवन के इस परम उददेश्य को शिक्षा से सहसम्बन्धित कर उन्होंने भारत की शिक्षा व्यवस्था के विषय में भी बड़े व्यावहारिक सुझाव दिए। उनकी दार्शनिक विवेचनाओं तथा शिक्षा चिन्तन का विवरण निम्नवत् है।।

श्री अरविन्द घोष के दार्शनिक विचार

श्री अरविन्द घोष के शिक्षा दर्शन का आधार आधयात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य तथा योग पर आधारित है। जिस शिक्षा पद्धति में ये तीनों पक्ष होंगे उसी से मनुष्य का विकास होगा। मनष्य में ईश्वर को पहचानने की शक्ति होती है। श्री अरविन्द घोष आधुनिक युग में उपनिषदों के दृष्टा के अवतार हैं। परन्तु शंकर एवं रामानुज इत्यादि के समान भाष्यकार नहीं हैं। श्री अरविन्द कोरे रहस्यवादी अथवा दृष्टा ही नहीं, बल्कि शंकर और बेडेल के जोड़ के तार्किक और कांट तथा हेगेल के समान बुद्धिवादी हैं। उनका दर्शन पूर्ण अनुभव और अदम्य बुद्धि का अनुपम सामंजस्य है। जो आध्यात्मिक विकास में सहायक है।

ज्ञान और सर्वाग दर्शन

अरविन्द एक आदर्शवादी थे एवं उपनिषदों के दर्शन के समकक्ष थे। उन्होंने जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य को अधिक महत्व दिया। वे विकास के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। विकास का लक्ष्य संसार में व्याप्त दिव्यशक्ति का बोध प्राप्त करना है। विश्व में विकासशील प्राप्तियों का एक ही लक्ष्य है। यह है पूर्ण और अखण्ड-चेतना की प्राप्ति है। मानव इस चेतना की प्राप्ति के उपरान्त अपना विकास करता हुआ अन्तिम मानसिक स्तर को प्राप्त करता है और स्वयं अति मानव बन जाता है। इस स्तर पर पहुंचकर वह सुख और शान्ति का अनुभव करता है तथा उसे संसार में व्याप्त सत्ता का बोध होता है। श्री अरविन्दो के अनुसार मानवता, विश्वात्मा एवं परमात्मा तीनों ही धरम सत्य है।

ज्ञान और अज्ञान

श्री अरविन्द जी ने ज्ञान और अज्ञान को परस्पर विरुद्ध नहीं माना है। अविच्या से विद्या, भोग से त्याग, संसार से सन्यास आत्मा, भगवान में जगत, जगत में भगवान यह उपलब्धि ही वास्तविक ज्ञान है। अज्ञान का वास्तविक गन्तव्य अन्य कोई अप्रकाशित परिवर्तन नहीं बल्कि ज्ञान ही है। वास्तव में जो कुछ हो रहा है. वह यह है कि अज्ञान खोज रहा है और प्रगतिशील ज्योति द्वारा अपने अन्धकार को ज्ञान परिवर्तन में चेष्टा कर रहा है। जोकि पहले ही उसमें सम्मिलित है।"

ब्रह्म और ईश्वर

आधुनिक काल में अरविन्द जी ने अनुभव किया कि उपनिषदों के संवर्ग ब्रह्म के समान ही है। ब्रह्म निगुर्ण भी है और सगुण भी है और स्थिर भी है और गतिशील भी है। उपनिषदों ने ब्रह्म का नीति और इति दोनों ही रूपों में वर्णन किया है। ब्रह्म संसार में है और संसार से परे भी है। वही ईश्वर भी है। ईश्वर को माया ठहराने पर धर्म के गुहा अनुभव पारमार्थिक दृष्टिकोण से निरर्थक और मिथ्या हो जाते हैं। ईश्वर सृष्टा, पालनकर्ता और हन्ता भी है। उपनिषदों के शब्दों में "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्तयभि संविषन्ति तद विजि ज्ञातत्व तद ब्रह्म। ईश्वर की समस्त दृष्टि का सार रूप है। विश्व उसी के रूप का विकास मात्र है। वही सृष्टा का प्रथम और अन्तिम भौतिक और प्रेरक कारण है।
अतः श्री अरविन्द जी के अनुसार पर ब्रह्म होने के कारण ईश्वर स्वयं ही निरपेक्ष भी है। वह न तो सम्भूति, न असम्भूति, न सत्, न असत्, न निगुण, न सगण, न चेतना, न जड़, न पुरूष न प्रकृति, न आनन्द, न निरानन्द, न मनुष्य न देवता का पशु, वह इन सब से परे है। वह और स्वयं ही वह सब बन जाता है।

माता

संसार की सृजनकृत्री शक्ति चित् शक्ति है। यदि हम इस चेतना शक्ति को समस्त सत्ता का तत्व रूप मान लें तो शुद्ध श्रद्धा भी गतिशील हो जायेगी। अतः इस चेतना शक्ति को शुद्ध सत्ता में सम्मिलित मानना पड़ेगा। वास्तव में चितशील का स्वाव भी है। विकास के मूल में आधारित इस चेतन शक्ति को श्री अरविन्द घोष ने सृजनात्मक तत्व कहा है। श्री अरविन्द के शब्दों के द्वारा समस्त क्रियाओं के पीछे है। परन्तु वह उसकी योग माया से समावृत है और निम्न प्रकृति में जीव के अहंकार के द्वारा कार्य करती है।

जीवात्मा

श्री अरविन्द के अनुसार ब्रह्म जड़ प्राण एवं मन के पीछे अन्तरंग जड़ प्राण और मानस है। इस प्रकार पुरूष भी दो हैं। ब्रह्म पुरूष अथवा इच्छा पुरुष जोकि हमारी वासनाओं और शक्ति से ज्ञान तथा प्रसन्नता प्राप्त करने के प्रयत्नों में कार्य करता है और अन्तरंग पुरुष अथवा वास्तविक मानस पुरुष जो प्रकाश, प्रेम प्रसन्नता और सत्ता के परिष्कृत सत्य की एक शुद्ध शक्ति है। मनुष्य की सत्ता का निर्माण इन तत्वों से हुआ है। हत्पुरूष, आन्तरिक मनोमय, प्राणमय, आनन्दमय पुरुष और ब्रह्मपुरूष। मन प्राण एवं शरीर की ब्राह्मय प्रकृति अन्तर पुरुषों के बाहर प्रकट होने का यन्त्र या कारण है पर इन सबके ऊपर जीवात्मा जो अपनी अभिव्यक्ति के लिये इन सबका व्यवहार करता है। वह स्वयं परमात्मा का ही अंश है पर मनुष्य का यह सत्य स्वरूप उसके ब्रह्म स्वरूप में छिपा रहता है। जो अपने अन्तरमय स्वरूप और अतत्मा के स्थान पर मनोमय और प्राणमय अहंकार को ला विठाता है। केन्द्रीय पुरुष का प्रयोग श्री अरविन्द के दर्शन में साधारणतया परमात्मा के उस अंश के लिये होता है। जो हमारे अन्दर है। जो अन्य तत्वों को धारण करता है और जन्म मृत्यु से परे रहता है। जो जीवात्मा अध्यक्ष रूप से जीवन के व्यक्तिकरण के ऊपर रहता है। हृत्पुरुष जीवन के व्यक्तिकरण के पीछे रहकर उसको धारण करता है।

पुर्नजन्म

श्री अरविन्द घोष का विश्वास है कि आत्मा के आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता पूर्ति के लिये पुर्नजन्म होता है। वे पुर्नजन्म को कर्म सिद्वान्त के प्रतिफल स्वरूप नहीं मानते। उनके अनुसार अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अदृश्य आत्मा मानव जीवन में प्रवेश कर चेतना शक्ति को ऊँचा उठाने और उसका विकास करने का प्रयास करती है उनका कथन है कि आत्म-प्रकाशन के लिये आत्मा विभिन्न रूपों को धारण करती है और अपना विकास करती है। मनुष्य रूपी शरीर आत्मा के कृमिक विकास से एक चर या स्तर मात्र है।

अरविन्द घोष के शैक्षिक विचार

श्री अरविन्द घोष जी भारतीयता से ओत-प्रोत भारतीय परिपेक्ष्य में शिक्षा के पुजारी थे। उनका विचार था कि हमारी शिक्षा भारतीय आत्म आवश्यकता, प्रकृति संस्कार, संस्कृति सभ्यता के अनुसार हो श्री अरविन्द जी के अनुसार, वास्तविक शिक्षा बच्चे को एक स्वतंत्र और सृजनशील पर्यावरण प्रदान करती है और उनके हितों की वृद्धि करके सृजनशीलता, मानसिक नैतिक और सौन्दर्य की अनभूतियाँ अन्ततः उसकी शक्तियों को विकास की ओर बढ़ाती है। एक स्थान पर श्री अरविन्द जी ने लिखा है कि "केवल वही सत्य और सजीव शिक्षा होगी जो एक व्यक्ति मानव में विद्यमान समस्त गुणों का पूर्ण लाभ साकार करने में सहायक बनाती है।

शिक्षा के उददेश्य

श्री अरविन्द घोष ने प्रचलित शिक्षा को दोषपूर्ण बताया और कहा यदि यह शिक्षा बालक का पूर्ण विकास कर सकने में असमर्थ है क्योंकि यह सूचनाओं के संग्रह मात्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। शिक्षा का कार्य तो बालकों के शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक आदि विकास करना है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा के निम्नलिखित उददेश्य निर्धारित किये

- बालक की शारीरिक शुद्धि और उसके शरीर को पूर्ण तथा उत्तम विकास करना।
- बालक की चित्त सम्बन्धी क्रियाशीलता को समुन्नत करके उसके अन्तःकरण का विकास करना।
- बालक की अभिरूचि के अनुसार उसकी स्मृति, कल्पना, चिन्तन और निर्णय शक्ति का विकास
- करके मानसिक विकास करना।
- बालक की प्रकृति आदतों और भावनाओं को शुद्ध और सुन्दर बनाकर उसके हृदय का परिवर्तन करना और उसकी नैतिकता का विकास करना।
- बालक की वैयक्तिक और प्रच्छन्न शक्ति को पूर्णता की ओर अग्रसर करके उसका आध्यात्मिक विकास करना।
- बालक को तथ्य संग्रह करने और निष्कर्ष निकालने का प्रशिक्षण देकर उसकी तर्क शक्ति का विकास करना।

शिक्षण विधियाँ

वह शिक्षण पद्धतियों को निन्न सिद्धान्तों पर आधारित करने पर बल देते हैं:

- बालकों के मनोभावों व रूचियों का अध्ययन।
- विषयों की प्रकृति के अनुसार अध्यापन में बालकों की शक्तियों का प्रयोग करना।
- बालकों को स्वयं प्रयत्न द्वारा शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेषित करना।
- छात्रों को क्रिया करने हेतु प्रेरित करना।
- शिक्षण प्रक्रिया में बालक की स्वतन्त्रता पर बल देना।
- अध्ययन के माध्यम के रूप में मातृभाषा का प्रयोग।

वह मानते थे कि अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए, चूंकि वह सफलता के साथ शिक्षण कर सकता है, जो बाल, मन, किशोर मन व प्रौढ़ मन की विशेषताओं की पूर्ण जानकारी रखता है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

श्री अरविन्दघोष शिक्षा में बालकों के आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक तथा मानसिक विकास को काफी महत्व देते हैं। इसके लिये वे निम्नलिखित पाठ्यक्रम प्रस्तावित करते हैं।

प्राथमिक स्तर

प्राथमिक स्तर पर बालकों मातृभाषा, सामान्य विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन, चित्रकला तथा फ्रेन्च भाषा के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

माध्यमिक स्तर

शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर मातृ भाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, स्वास्थ्य विज्ञान, चित्रकला तथा भूगर्भशास्त्र के शिक्षण को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए।

विद्यालय स्तर

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के स्तर पर भारत तथा विश्व के अन्य प्रमुख दर्शनों के अध्ययन का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसके साथ ही उसे विश्व एकीकरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध इतिहास, समाजशास्त्र मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं, अंग्रेजी साहित्य सभ्यता का इतिहास व गणित की शिक्षा भी देनी चाहिए।

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षक व शिक्षार्थी

श्री अरविन्द शिक्षक को ज्ञान देने का माध्यम भी मानते थे। वरन वह उसे एक मार्ग दर्शक व सहायक के रूप में मानते हैं। वह यह भी मानते हैं कि एक आदर्श शिक्षक व्यक्ति की आत्मा को आगे बढ़ने वाला होता है शिक्षक को आधात्म विषय का स्पष्ट ज्ञान हो तथा वह योग की क्रिया में दक्ष हो वह शिक्षक को योगी बनाना चाहता थे। विद्यार्थी के सम्बन्ध में उनका विचार था कि विद्यार्थी एक ऐसी दैवीय रचना है। जिस में कुछ ईश्वरीय देन होती है और कुछ विशिष्ट प्रतिभा होती है। वह व्यक्तिगत भिन्नता को मानते थे। उनकी कल्पना थी कि शिक्षार्थी को विनय, परोपकार, स्वाध्याय, एकाग्रता व सेवा आदि गुणों को अपने अन्दर निहित करना चाहिए। तभी वह देवीय प्रकाश का प्रयत्न कर सकता है। वह पर्यावरण के सम्बन्ध को स्वीकार करते हुये मानते हैं कि बालक को अच्छे पर्यावरण में रखना चाहिए जिससे उसमें अच्छे गुणों का विकास हो सके।

विद्यालय के सम्बन्ध में श्री अरविन्द

वह यह मानते है कि विद्यालय ऐसा हो जो बालक के अन्दर भौतिक व आध्यात्मिक गुणों का विकास कर सके। वह मानते थे कि विद्यालय का वातावरण विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए। उन्होंने विद्यालय के सम्बन्ध में अपने विचारों को क्रियान्वित करने हेतु आश्रम की स्थापना की। जिससे वह अरविन्द आश्रम के नाम से जाना गया। यहाँ पर भौतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी व विभिन्न धर्म व जाति के लोग यहाँ पढते थे। इन्होंने पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था की ।

अनुशासन के सम्बन्ध में श्री अरविन्द

श्री अरविन्द शिक्षा, जीवन एवं अनुशासन का पारस्परिक सम्बन्धित मानते थे। वह दमनात्मक अनुशासन की अपेक्षा प्रभावात्मक अनुशासन को अच्छा मानते थे। वह योग की साधना द्वारा अनुशासन की स्थापना करना चाहते थे। इसके लिये मनसा वाचा कर्मणा से ब्रह्मचर्य के पालन पर बल देते थे। वह इस बात पर बल देते थे कि अनुशासन का सम्बन्ध भावना से होता है और सह भावना का सम्बन्ध नैतिकता का उचित विकास करना। अनुशासन के लिये आत्म नियंत्रण भी जरूरी है वह कहते हैं ज्ञान पिपासा, आत्म ज्ञान, पवित्रता, साहस, सुझाव सज्जनता, वीरता और देश भक्ति आदि का पालन करना ही वास्तविक अनुशासन है जो अन्तः प्रेरित है।

श्री अरविन्द के अनुसार नैतिक व धार्मिक शिक्षा

श्री अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार नैतिकता एवं धर्म पर आधारित है। उनका मानना था कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था नैतिकता एवं भावात्मकता से दूर है इसका प्रमुख कारण शिक्षा व धर्म के बीच

कि दूरी है। उसका कारण उचित धार्मिक शिक्षा का अभाव है। अतः शिक्षा व धर्म को अलग-अलग रखना उचित नही है। श्री अरविन्द ने हमे बताया कि धार्मिक शिक्षा किसी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं है। श्री अरविन्द के अनुसार आन्तरिक अनुशासन के द्वारा ही नैतिक गुणों को ग्रहण किया जा सकता है। नैतिक शिक्षा के लिये आवश्यक है कि बालक का सर्वोत्तम मानसिक, भावात्मक तथा शारीरिक ढंग से विकास हो। वह किताब के द्वारा नैतिक शिक्षा दिये जाने से असन्तुष्ट थे। नैतिक शिक्षा किस प्रकार की हो। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द का कहना है कि नैतिक शिक्षा का प्रथम नियम है कि छात्रों को सही दिशा की ओर इंगित करें। विद्यार्थी को अवसर प्रदान करने चाहिए। जिससे कि उनके अन्दर के गुणों का विकास हो बालक की इच्छा शक्ति को बलवती बनाना ही भय के स्थान पर साहस, स्वार्थ के स्थान पर त्याग, घृणा के स्थान पर प्रेम का संचार करना है।

श्री अरविन्द के राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में विचार

हमारे लिये राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ है भारत राष्ट्रीय शिक्षा का कौन सा तत्व और रूप अपनाना चाहिए। हमें क्या प्राप्त करना है और किस विधि से मोड़ देना होगा। सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने मन में यह स्पष्ट कर लें कि राष्ट्रीय भावना, स्वभाव, विचार और आवश्यकता की शिक्षा क्षेत्र में हमसे क्या माँग है? सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा की नींव अपने ही विश्वासों, अपने मस्तिष्क और आत्मा के आधार पर डाली जाये। केवल ऐसी शिक्षा नहीं जो भूतकाल के प्रति आस्था रखती हो, बल्कि भारत की विकासमान आत्म के प्रति उसकी भावी आवश्यकता के प्रति उसकी आत्मोत्पत्ति महानता के प्रति उनकी शाश्वत आत्मा के प्रति आस्था रखती हो।

श्री अरविन्द एक राष्ट्रवादी विचारक थे। वह स्वयं एक देश भक्त थे। इसके साथ श्री अरविन्द भौतिकवादी जीवन पद्धति के साथ शिक्षा के तादात्म्य के बीच मानव जीवन के अंतर्मन में उतर आने वाली भौतिकता स्वार्थपरता व संकीर्णता से मानव जाति को बचाने का प्रयास करते हुए शिक्षा को आध्यात्मिकता से जोड़ते है वह बालक के भौतिक विकास व उसके आत्मिक विकास को पर्याप्त महत्व देते हुए शिक्षा के माध्यम से स्वस्थ, शुद्ध व नैतिक शिक्षितों के द्वारा आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग दिखाते है। उन्होने शिक्षा को मनुष्य में निहित शाक्तियों का बाह्य प्रस्फुटन माना । मनुष्य में निहित तामसी गुणों का दमन कर रजस गुणों व सात्विक गुणों को जागृत करना शिक्षा का प्रमुख उत्तरदायित्व माना था। जोकि एक आर्दश व्यक्तित्व का निर्माण कर सकेगा।

उनके शिक्षा चितंन में हमें आधुनिक मनोविज्ञान की अनदेखी भी देखने को नहीं मिलती। वह बाल मनोविज्ञान की दिशा में भी बड़े सजग दिखे। बालक की स्वतंत्रता तथा क्रियाशीलता को पर्याप्त महत्व देते हुए उन्होने ज्ञानेदियों के उचित प्रशिक्षण की बात कही। इन प्रशिक्षणो की परिपक्वता के साथ बालक के अंतः करण का विकास कर वह मानव जीवन व मानवीय समाज में सब कुछ ठीक-ठाक व व्यवास्थित कर देने की कल्पना करते है। महीष श्री अरविन्द का शिक्षा दर्शन भारत के पारम्परिक व आधुनिक शिक्षा पद्धतियो का ऐसा व्यवहारिक समायोजित रूप है। जिससे हम अवश्य ही उनके शिक्षा चिंतन से दिशा निर्देश प्राप्त कर अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास कर सकेगे। श्री अरविन्द ने लिखा है" सच्ची और वास्तविक शिक्षा वह है जो मानव की अन्तनिहित शक्तियों को विकसित करके सफल बनाने में सहायता प्रदान करती है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, रामबाबू (1998), विश्व के महान शिक्षशास्त्री, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा।
2. पाण्डे, रामशक्ल (2002), विश्व के श्रेष्ट शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. शर्मा रजनी, पारीक मथुरेश्वर (2004), उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, प्रकाशक डा. अमित पारीक 23, भगवान दास मार्केट चौड़ा रास्ता, जयपुर।
4. पाठक एवं त्यागी, (2004), शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, प्रकाशक श्री विनोद पुस्तक मन्दिर हॉस्पिटल रोड़, आगरा-21
5. श्रीवास्तव, मदन मोहन (2007), शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, प्रकाशक वंदना पब्लिकेशन्स द्वितीय तल जे.एम.डी. हाउस-4 बी असारी रोड़ दरियागंज, नयी दिल्ली।
6. लाल एवं पलोड (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, प्रकाशक विनय रखेजा आर. लाल बुक डिपो निकट गवर्नमेण्ट कॉलिज, मेरठ।
7. पचौरी, गिरीश (2009), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, प्रकाशक विनय रखेजा आर. लाल बुक डिपो निकट गवर्नमेण्ट कॉलिज, मेरठ।
8. अग्रवाल जे.सी. (2009), शिक्षा का मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और सामाजिक आधार, प्रकाशक 115-ए विकास मार्ग
9. शकारपुर, दिल्ली।
10. पचौरी, गिरीश (2010), शिक्षा का दर्शन. प्रकाशक विनय रखेजा आर. लाल बुक डिपो निकट गवर्नमेण्ट कॉलिज, मेरठ।
11. अग्रवाल जे.सी. भोला पी. (2010). भारतीय दर्शन एक अध्ययन, प्रकाशक शिप्रा पंकज सैन्टर मार्केट पडपड़गंज, दिल्ली।
12. लाल, रमन बिहारी एवं तोमर सिंह गजेन्द्र (2011), शिक्षा के दार्शनिक आधार, प्रकाशक आर. लाल बुक डिपो निकट गवर्नमेण्ट कॉलिज, मेरठ ।
13. त्यागी, जी एस.डी. एवं पाठक, पी.डी. (2015), शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, श्री विनोद पुस्तक मंन्दिर हॉस्पिटल रोड़, आगरा-21।